

विषयसूची

विषय	पृ०
१ मङ्गलानन्द तथा हारी के नाम	१
२ नवहार के अन्तर्गत भेद ११	२
३ अन्तर्गत में-१ नामहार और २ मङ्गलार्थहार	२
४ ७ नद्यों के लक्षण	३—४
५ नैमग्न और सगह नद्य का स्वरूप	४—५
६ व्यवहारसमुत्पन्न और शब्द नद्य का स्वरूप	५—६
७ समभिरुद्ध और एवभूत का स्वरूप	६—११
८ लक्षणाहार	११—१२
९ नैमग्न नद्य के भेद	१३—१४
१० समर नद्य के भेद	१५—१६
११ व्यवहार नद्य के भेद	१६—२०
१२ समुत्पन्न नद्य के भेद	२०—२१
१३ शब्द समभिरुद्ध और एवभूत नद्य का एक एक भेद	२१
१४ नैमग्न नद्य के तीन भेद	२२
१५ सगह नद्य के तीन भेद	२३—
१६ व्यवहार और समुत्पन्न नद्य के दो ठो भेद	२३
१७ शब्द समभिरुद्ध और एवभूत नद्य का एक एक प्रकार २३—२४	२३—२४
१८ सात नद्यों के पायती वस्त्रों और प्रदेग के दृष्टान्त २५—२६	२५—२६
१९ जीव धर्म तिलक समाधिक और बार पर	
सात नद्यों का अवतार (उतारना)	२६—२७
२० उपाधिक और पय माधिक नद्य के भेद	२७—२८
२१ सात भेद हार	२८—२९
२२ सात नद्यों के ७०० भेद	२९ ००



सात नयों का धोकरा

वीरं प्रणम्य सर्वज्ञ, गौतम गणितं तथा ।
नयानां क्रियते व्याख्या, स्वात्मानुग्रहेनैव ॥१॥

आकृत्योगद्वारा तब मैं सात नयों का अधिकार
बला है वह इच्छा है हर के अनेक स्थल में बगिन
है उस अधिकार को करने है—

२६ अंगों के नाम

१ नयनार, २ निक्षेपकार, ३ श्रवणगुणवर्षाय,
४ श्रवणश्रेष्ठकारभाब, ५ श्रवणभाब, ६ कारणकार्य,
७ निक्षेपव्यवहार, ८ उपादान तथा निमित्तकारण,
९ प्रमाद १०, ११ गुरुगुणी १२ सामान्यविशेष,
१३ श्रेष्ठज्ञानहानि १४ उन्मत्तव्ययश्रुत १५ आधार-
देव, १६ आदिनिर्विनिरोभाब, १७ सुदयना और

गीतना, १७ उन्मर्गापवाद, १८ आत्मा ३, १९ ध्यान ४,
२० अनुयोग ४, २१ जागरणा ३ ।

प्रथम नगर के अन्तर्गिरि (भेद) ११.

१ नामद्वार, २ शब्दार्थद्वार, ३ स्वरूपद्वार, ४ लक्ष
गद्वार, ५ भेदद्वार, ६ उद्धान्तद्वार, ७ नयावतारद्वार,
८ रत्नाधिकपयोपाधिकद्वार, ९ समसर्गद्वार, १० सात
नगा के १०० भेद द्वार ११ निशपक्षपादद्वारद्वार ।

अन्तर्गिरि में—१ नाम द्वार.

सात मुख्यनगा १ नाम कहते हैं— १ नैगमनग,
२ अग्रजमग ३ उपगारमग, ४ कर्तृमन्त्रमग ५ शब्द-
मग ६ समसिद्धमग ७ परोक्षमग ।

२ शब्दार्थद्वार

प्रथम नगर के सात अन्तर्गिरि १ नैगमन,
२ अग्रजमग ३ उपगारमग ४ कर्तृमन्त्रमग ५ शब्द-
मग ६ समसिद्धमग ७ परोक्षमग ।

को जैसी को तैसी स्थापना करे वही प्रमाण कहा जाता है, उस प्रमाण के दो भेद हैं—सविकल्प और निर्विकल्प। जो इन्द्रियद्वारा प्रवर्तित होने वाले मति श्रुत अवधि मना-पर्यय ज्ञान स्वरूप हो वह सविकल्प है और जो इन्द्रियार्थात् केवलज्ञान रूप हो वह निर्विकल्प है। इस प्रकार प्रमाण के अर्थ जानना। और जो इसी प्रमाण के द्वारा गृहीत (ग्रहण की हुई) वस्तु के एक अंश का ज्ञान कराने वाला हो उस का नय कहते हैं। अथवा ज्ञाता (जानने वाले) का जो अभिप्राय है वही नय कहा जाता है और नाना स्वभाव में लेकर वस्तु का एक स्वभाव से स्थापित कर उसका तथा वस्तु के एक देश को जानने वाले ज्ञान का नय कहते हैं।

नयी के 'ज्ञान

जो विकल्प से संयुक्त हो वह नंगमनय १। जो अविशेषरूप से वस्तु को ग्रहण करे वह संग्रहमनय २। जो

१. इसके अन्य स्थल में हम भी लक्षण कह रहे हैं, जैसे एक वचन में एक अवयवमात्र उपयोग में ग्रहण था वह उस का सामान्य रूप होने से वह वस्तु को ग्रहण करे वह संग्रह नय, अथवा सब भेदों को सामान्य होने पर ग्रहण करे वह संग्रहमनय, अथवा 'संग्रहमनय इति संग्रह' जो समुदाय अर्थ ग्रहण करे वह संग्रहमनय कहा जाता है।

इस (संग्रह) नय से जिस जिस अर्थ को ग्रहण करें
 सन्तों अर्थों के भेद करके वस्तु का फैलाव करें वह
 व्यवहार नय ३। जो सरल भांति सूचना करें वह क्रजु-
 स्रव नय ४। जो शब्द व्याकरण से प्रकृतिप्रत्यय द्वारा
 सिद्ध हो वह शब्द नय ५। जो शब्द में भेद होते हुए
 भी अर्थ का भेद नहीं हो जैसे- शक इन्द्र पुरन्दर
 आदि, वह समभिन्न नय ६। और जो क्रिया के
 प्रदान पानों से हो वह पानंभन नय ७ कहा जाता है।

३ स्वरूपज्ञान

सम्यक् नय वाला पदार्थ को सामान्य मानता है विशेष नहीं, तीन काल की धार मानता है, निक्षेप धार मानता है, नयन सम्यक् में वस्तु को ग्रहण करे, इस पर दान्त का दृष्टान्त, जैसे किसी साहूकार ने अपने अनुवर (दास) को कहा कि दान्त लाओ, तब वह दास ' दान्त ' ' दास ' शब्द सुनकर दान्त मर्ती दन्त-मञ्जन कुत्ता जिम्मे दारी काव कांगता रुमाल पाग पोशाक जन्कार इत्यादि दान्त की सब सामग्री ले आया । इस प्रकार सम्यक् नय वाला एक शब्द में अनेक वस्तु को ग्रहण करे जैसे वन को वन कहे परन्तु वन में वस्तु अनेक हैं ।

— २२ —

३ ।

अव्यक्त नय वाला पदार्थ को विशेषरहित सामान्य मानता है, तीन काल की धार मानता है, निक्षेप धार मानता है, तथा जो वस्तु का विवेचन करे अर्थात् भेद करे उस को व्यवहार करने हैं जैसे-जीव के दो

नर पोलनी है कि मेरे समरेजी पंमारी बाजार में
 मंड मिरन विगेरे मरीदने को गये है, तब उस पुरुष
 ने पंमारी बाजार में जाकर मेठजी की तलाश की
 मगर वहाँ नहीं पाये तो पीछा आकर फिर पूछता है
 कि बार् ! वहाँ तो मेठजी नहीं मिले मन् यनाइये कि
 मेठजी कहाँ गये है ? तब नर पोलनी है कि मेरे सम-
 रेजी बाजार के वहाँ जूने मरीदने को गये है, तब उस
 पुरुष ने धानियाँ के बाजार में जाकर तलाश की तो
 वहाँ भी मेठजी नहीं पाये तब पीछा वहाँ आया
 तो इतने ध मेठजी की सामागिक परी हो गई थी,
 धानियाँ सामागिक पाइकर उस पुरुष ने मिल और
 धान चाल कर उस की सामगिक और धान की वृत्ति
 करके दूनी कि वह 'न' जाननी या १ समरेजी सामा-
 गिक मरीदने नाकि नाचक उनका प्रकट किया पाया
 तब उस नर ने समरेजी दिया कि आप का मन
 इस वस्तु समरेजी के वहाँ मना माना के वहाँ गया था
 दुल्लभ ! कि १०० १०० १०० १०० १०० १०० १०० १००
 १०० १०० १०० १०० १०० १०० १०० १०० १०० १००
 १०० १०० १०० १०० १०० १०० १०० १०० १०० १००

सभा में बैठा हुआ गग गग नाटक नेटक देगे इन्डि
पञ्चम सुगों का अनुभव करे उस वगत तद शनी-
पति है । देवेन्द्र-जय देवनाथों की सभा में बैठा हुआ
न्याय (इन्माफ) करे उस समय तद देवेन्द्र है । तंगी
समयभिरुदनपरायण शब्द पर साफ़ होकर सपन जयों
का भिन्न भिन्न अर्थ समझ करता है। अथवा किधियु
तद शब्द का भी संपूर्ण अर्थ मानता है, जैसी-देवेन्द्र
या शब्द का अर्थ समझाते हैं। तब भी समझाने का भाग मित्र
सा होता है ।

1000

(1)

[illegible]

जिष्ठा करे उसी को पगे बन्तु करना है, जैसे पानी से भरा हुआ गी के शिर पर जलाना सम्यक् जेष्ठा करना हुआ तो उसी समय उस को पगे (पहने) करना है किन्तु पगे के सोने से पहे हुए पगे को पगे नहीं मानना है, जैसे चाकर जाव सब कर्मों का अग्रज के मुक्तिशत्रु से विराजमान हो कर जो उस को सिद्ध करना है।

१ लक्षणजः

लोहिं सारोहिं पितृनि योगमस्त द निहनी ।
 मेसाणदि नयान् लकठरनिर्गमो सुखं बोद्ध ॥ १॥
 मगदिभदिहेयः ॥ २॥ मगदयः समस्तमो विनि ।
 दजः विनिनिदयः ॥ ३॥ दजः नमस्तुते ॥ ४॥
 दजः विनिनिदयः ॥ ५॥ दजः नमस्तुते ॥ ६॥
 दजः विनिनिदयः ॥ ७॥ दजः नमस्तुते ॥ ८॥
 दजः विनिनिदयः ॥ ९॥ दजः नमस्तुते ॥ १०॥
 दजः विनिनिदयः ॥ ११॥ दजः नमस्तुते ॥ १२॥
 दजः विनिनिदयः ॥ १३॥ दजः नमस्तुते ॥ १४॥

(अनुवादः)

१ नैमिष नय सामान्य विशेष तथा उभय प्रधान वस्तु को मानना है २ सामान्य सामान्य प्रधान वस्तु को मानना है यथा सत् जगत् ३ व्यवहारनय विशेष

अपेक्षा कारण में उत्पादान कारण का आरोप करना जैसे मुनि के पात्रादि उपकरण को चारित्र (संयम) का आधार कहना, इसी का नाम कारणारोप है ।

संकल्प नैगम के दो भेद होते हैं- स्वयंपरिणामरूप और कार्यरूप । स्वयंपरिणामरूप जो वीर्य चेतना का संकल्प होना इस जगत् जुदा = क्षय और उप-शम भाव लाना है दूसरा कार्यरूप- जैसा = कार्य हो वैसा = उपयोग हो, जैसे मिट्टी का करवा बना उस समय करवा का उपयोग और टकनी बनी उस समय टकनी का उपयोग ।

(सप्तम नय)

सप्तम नय के दो भेद हैं- सामान्यसंग्रह और विशेषसंग्रह । सामान्यसंग्रह के भी दो भेद हैं- मूलसामान्यसंग्रह और उत्तरसामान्यसंग्रह । मूलसामान्यसंग्रह के अस्तित्व १ वस्तुत्व २ द्रव्यत्व ३ प्रमेयत्व ४ प्रदेशत्व ५ और अगुलघुत्व ६, ये छह भेद हैं और उत्तरसामान्यसंग्रह के दो भेद हैं- जातिसामान्य और समुदायसामान्य । जातिसामान्य जो एक जातिमात्र को ग्रहण करे । समुदायसामान्य-जो समुदाय अर्थात्

पहलार । पहले श्रेष्ठ भा अर्थ यह है कि- स्व याने अपनी आत्मा या जा नरय याने ज्ञान दर्शन चारित्र्य वीर्य व्यादि अनन्तगुण गानन्दमय है, मेरा कोई नहीं और मैं हिता या नहीं है, ऐसा जो अपने स्वरूप को जानना इस का नाम परवस्तुगन्तत्त्वज्ञाननव्यवहार है । इसका भेद परवस्तुगन्तत्त्वज्ञाननव्यवहार । इस दो । जो स्वयं को जानना भेद है और किसी अपेक्षा से नार नयवा पाच भेद भी हो सकते हैं, इन सब को एक साथ दिखाने ह, जैसे धर्मास्तिकाय में चरन-सहाय व्यादि गुण (लक्षणा) हैं और अधर्मास्तिकाय में हिम म्हाय आदि गुण हैं, आकाश में अगातनाद गुण ह, पृथ्वी में मिलन विखरन व्यादि गुण और काल में नया पुराना वर्तनादि गुण ह, इत्यादिक । इन सब परवस्तुगन्तत्त्व को जानना इस का नाम परवस्तुगन्तत्त्वज्ञाननव्यवहार है ।

अन्य प्रकार से भा इस वस्तुगन्तव्यवहार के तीन भेद होते हैं सा भा । तब ते है- १ द्रव्यव्यवहार २ गुणव्यवहार और ३ स्वभावव्यवहार । द्रव्यव्यवहार इस का कहते हैं कि जगत् में जा द्रव्य (पदार्थ) हैं उन को यथार्थ जानने, इस द्रव्य व्यवहार के कहने से बौद्धादि मन का निराकरण होता है । दूसरे गुणव्यवहार

पाप करना, जैसे किसी को ज्ञान गुण लेकर ज्ञानी करना, दान में दाना और जग्गि में जग्गी रखादि

अशुद्ध व्यवहार के भाँटा भेद - १. सश्लेषित अशुद्ध व्यवहार और असश्लेषित अशुद्ध व्यवहार । सश्लेषित अशुद्ध व्यवहार उस का करने में जो यह ज्ञान भोग के योग में रहने का होता है । असश्लेषित अशुद्ध व्यवहार उस का करने में जो भ्रमादि योग है । ऐसा करना ।

इस अशुद्ध व्यवहार का अन्य प्रकार से भी भेद होना है जो इस प्रकार - इस के मुख्य दो भेद हैं-विवेकमत्तः अशुद्ध व्यवहार और प्रवृत्तिरूप अशुद्ध व्यवहार । विवेकमत्तः अशुद्ध व्यवहार को अनेक प्रकार का है । उसका जो प्रवृत्तिरूप अशुद्ध व्यवहार है उस के तीन भेद हैं वस्तुप्रवृत्ति, साधन-प्रवृत्ति और लौकिकप्रवृत्ति । इन में भी साधनप्रवृत्ति के तीन भेद हैं-लोकोत्तरसाधनप्रवृत्ति, कुशावबन्धक साधनप्रवृत्ति और लोकव्यवहार साधनप्रवृत्ति । लोकोत्तरसाधनप्रवृत्ति-जो अद्वैत की आशा से शुद्ध साधन मार्ग में इहलोक मत्तार दुःख भोग जाहसादि दोष रहित जो रत्नत्रयी की परिणति परभाव त्याग सहित

नहीं मानता है । स्थूलकृजसूत्रवाला साध प्रवृत्ति
अथवा कथनों के कथनेवाले को जैसा देखता है वैसा
ही मानता है ।

(शब्द नय)

शब्द नय के चार भेद हैं-नाम, स्थापना, द्रव्य
और भाव । इन चार भेदों को ही जैनशास्त्र में निश्चय
कहते हैं ।

(समञ्जिरुट नय)

समञ्जिरुट नय का यह एक ही भेद है ।

(एवभूत नय)

एवभूत नय का भी पूर्वोक्त केवल एक ही भेद है ।
अब अन्य प्रकार से भी नयों के भेद कहते हैं—

इसके अन्यटिकाने सात भेद भी कहें हैं, देखा नयचक्र
देवचन्द्रजा एत । १ इन निक्षेपों का विशेष विग्रह देखा आगम-
सर नयचक्र द्र प्रामुख्य उपर । यदि । २ इस के अन्य टिकाने
जो भेद भी कहें हैं देखा नयचक्र देवचन्द्रजा एत ।

सद्य जीव चैतन्यभाव द्वारा विरोधरहित है ऐसा कहना ।

(व्यवहार नय)

व्यवहारनय दो प्रकार का है-सामान्यसंग्रहभेदक व्यवहार और विशेषसंग्रहभेदकव्यवहार । सामान्यसंग्रहभेदकव्यवहार-जैसे जो द्रव्य है सो जीव अजीव स्वरूपी है ऐसा कहना । विशेष संग्रहभेदकव्यवहार-जैसे जोव है सो संसारी भी है मुक्त भी है, ऐसा कहना ।

(कृतसूत्र नय)

ऋजुसूत्र नय के भी दो भेद हैं- सूक्ष्मऋजुसूत्र और स्थूल ऋजुसूत्र । सूक्ष्म ऋजुसूत्र-जो सूक्ष्मपणे वस्तु को संग्रह करे तथा जो एक समयावस्थायी पर्याय माने । स्थूलऋजुसूत्र- जो स्थूलपणे वस्तु को संग्रह करे, तथा मनुष्यादि पर्याय को अपने २ आयुः प्रमाण काल तक उहरना माने ।

(शब्द नय)

शब्द नय एक प्रकार का है-जो शब्द के द्वारा हो वस्तु

तो जाने जैसे-दारा, भारी कलत्रं । ये शब्द प्रनेकं
परन्तु अर्थ एक ही है ।

(ममभिरु नम)

ममभिरु नम का भी एक मत है जो जहाँ जैमी
स्थापना कर के पशु का उदर करे जैमी मो पशु है ।

(पशु नम)

पशु नम का भी एक मत है जो जहाँ मार्क
का नाम रखकर नाम ले जैमी 'पशुनाम उदर' जो
पशु नाम का नाम का नाम उदर है ।

६. श्रान्त-नाम ।

नय के अभिप्राय से बोला कि मैं पायली लेने को जाता हूँ, अब कुछ देरने हुए उस को देख कर किसी पुरुष ने पूछा 'भाई' तू क्या बोलता है', तब वह विशुद्ध नैगम नय के अभिप्राय से बोला कि भाई! मैं पायली बोलता हूँ। अब वह कुछ काट कर घर लाया और पहने लगा, तब किसी ने पूछा कि भाई! तू क्या बोलता है' तब वह बिना नैगम नय के अभिप्राय से बोला कि मैं पायला पहना हूँ। इस लफ्फ को धीमे से कोरने हुए का देख कर किसी ने पूछा कि भाई! तू क्या कोरता है', तब वह विशुद्ध नैगम नय के अभिप्राय से बोला कि मैं पायला कोरता हूँ। उस को लेखिनी ने समाने हुए को देख कर किसी ने पूछा कि भाई! तू क्या समारता है', तब वह अत्यन्त विशुद्ध नैगम नय के अभिप्राय से बोला कि मैं पायली को समारता हूँ। अब वह पायली संपूर्ण तैयार हो गई और उस को पायला कहना, यहां तक विशुद्ध नैगम नय का अभिप्राय है। व्यवहार नय का भी इसी तरह मानना है। तब सूरदनय वाला बोला कि भाई! जब इस में धान्य भरेंगे तब यह पायली कहो जायगी अन्यथा यह काट है। कलुष नय वाला

कहना है कि जब पादरी में धान्य भर कर एक दो तीन चार पांच दण्डादि जलद कर के धान्य मांगोगे तब पादरी कहा जायगी अन्यथा यह माष्ट न आयेगा धान्य न । तब जलदार्थ तीन चार पांच पाछे कि उस पादरी में धान्य भर के जब उपयोग मजित एक दो तीन चार पांच दण्डादि जलद कर के मांगोगे तब पादरी कहा जायगी अन्यथा यह माष्ट न आयेगा धान्य है और यह जलद न ।

रहता है। तब वह गण्डादि तीन नया के अभिप्राय से बोला कि मैं अपने आत्मस्वरूप से रहता हूँ।

तैगम नय वाला चार नयों का प्रदेश कहता है जैसे धर्मान्निकाय का प्रदेश, अधर्मान्निकाय का प्रदेश, आकाशान्निकाय का प्रदेश, जल का प्रदेश, पृथ्वी-न्निकाय का प्रदेश, ईश का प्रदेश। तैगम नय वाले के ऐसे कहने पर तैगम नय वाला बोला कि जो न वह द्रव्यों का प्रदेश कहता है या चार नयों का प्रदेश नहीं होता है क्यों कि ईश का जो प्रदेश है वह उसी इन्द्र-स्वरूप का है किन्तु वृक्षा प्रदेश अलग नहीं है, इस पर वृष्टान्त कहते हैं जैसे किसी साहूकार के दास ने खर (गर्जन) लगाया तब वह साहूकार कहता है कि दास भी मेरा खीर खर का मेरा है परन्तु खर दास का नहीं कहलाता। इस वृष्टान्त से चार द्रव्यों का प्रदेश मन क्यों परन्तु दास दास का प्रदेश नहीं-

२ स्यात् अधर्मास्तिकाय का प्रदेश, ३ स्यात् आकाशास्तिकाय का प्रदेश, ४ स्यात् जीव का प्रदेश, ५ स्यात् पुद्गलस्कन्ध का प्रदेश । ऋजुसूत्र नय वाले के ऐसे बोलने पर शब्द नय वाला कहता है कि जो तुं 'भज्यव्वो' भजनीय प्रदेश कहता है सो नहीं होता है क्यों कि भजनीय प्रदेश कहने से एसी शङ्का प्राप्त होती है कि जो धर्मास्तिकाय का प्रदेश है वही स्यात् अधर्मास्तिकाय का भी प्रदेश होता होगा, स्यात् आकाशास्तिकाय का भी प्रदेश होता होगा, स्यात् जीव का भी प्रदेश होता होगा, स्यात् पुद्गलस्कन्ध का भी प्रदेश होता होगा । इस रीति से जो अधर्मास्तिकाय का प्रदेश है वही स्यात् धर्मास्तिकाय का भी प्रदेश होता होगा, स्यात् आकाशास्तिकाय का भी प्रदेश होता होगा, स्यात् जीव का भी प्रदेश होता होगा स्यात् पुद्गलस्कन्ध का भी प्रदेश होता होगा । इसी तरह आकाशास्तिकाय का प्रदेश, जीव का प्रदेश और पुद्गलस्कन्ध का प्रदेश को भी समझ लेना चाहिये । ऐसे (भजनीय प्रदेश) कहने से तो अनवस्था दोष का प्राप्ति होगी इसलिए भजनीय प्रदेश मत करो किन्तु ऐसा करो कि जो धर्मरूप द्रव्य का प्रदेश है वही धर्मप्रदेश है जो अधर्मरूप द्रव्य का प्रदेश है वही अधर्म प्रदेश है, जो

प्रदेश है वही प्रदेश जाज्ञाश द्रव्य है । जीव का जो प्रदेश है वह प्रदेश जीवद्रव्य नहीं है और पुङ्गलस्कन्ध का जो प्रदेश है वह प्रदेश पुङ्गलस्कन्ध नहीं है । समभि-
रुद नय वाले के ऐसे बोलने पर एवम्भुत नय वाला कहता है कि जो जो धर्मात्मिकायादिक वस्तु नू कहता है वह वह 'सर्वे' नय 'कुम्भ' देशप्रदेशकल्पनारहित, 'प्रतिष्ठा' स्व स्वरूप में अभिन्न, 'निरवशेष' अवयव-
रहित, 'एकग्रहणगुण' जो एकही नाम से बोलाजावे ननु अनेक नामों से, कारण कि नाम के भेद से वस्तु में भेद की स्मरण होजाती है इस लिए धर्मात्मा-
कायादि वस्तु को समझे क्यों किन्तु देशप्रदेशादिरूप से मन क्यों क्यों कि देश भी मेरे मन में वस्तु नहीं है और प्रदेश भी मेरे मन में वस्तु नहीं है, सिर्फ अखण्ड वातु का ही सन्ध से उपयोग होना है ॥

७ नयावतार द्वार

प्रथम जीव के विषय में सात नय कहने हैं- नैग-
मनय के मन से हुए पर्याय और शरीर सहित सभी जीव है, इस नय ने ऐसे कहने हुए पुङ्गलद्रव्य धर्मा-
त्मिकाय आदि को भी जीव में गिनलिया । संग्रह नय कहना है कि असंख्यान प्रदेश वाला जीव है, इस न-

व्यय धर्म के विषय में सानो नयो को उतारते हैं—

नैगमनय के मत में सद्य धर्म है क्यो कि सद्य कोई धर्म की इच्छा रखता है, इस नयने अंशरूप धर्म को भी धर्म नाम कहा है । संग्रह नय के मत से जो वशापरम्परा का धर्म है वही धर्म है, इस नय ने अनाचार को झाड़कर कुलाचार को ग्रहण किया है । व्यवहारनय के मत से जो सुख का कारण है वही धर्म है, इस नय ने पुण्य की करना को ही धर्म कहा । ऋजुसूत्र नय के मत से उपयोगसहित वैराग्यपरिणाम को धर्म कहते हैं, इस से यथाप्रवृत्तिकरणा का परिणाम भी धर्म हो जाता है जो परिणाम मिथ्यास्वी लोगो को भी होता है । शब्दनय के मत से समकित की प्राप्ति को ही धर्म कहते हैं क्यो कि धर्म का मूल समकित है । समभिरुद नय के मत से जीव अजीवादि नव तन्त्रो को या ब्रह्म द्रव्यो की जानकर अजीव का त्याग करनेवाला और जीव-सत्ता को ध्यानेवाला जो ज्ञान दर्शन चाग्रित्र का परिणाम वही धर्म है, इस नय ने साधक और सिद्ध इन दोनों परिणामों को धर्म में अङ्गीकार किया । एवभूत नय के मत से शुक्लध्यान रूपान्तर परिणाम और क्षपकश्रेणि, ये जो कर्मअय के हेतु हैं वेही धर्म है क्यो कि जीव

का मुन्नाभावा ही धर्म है, हम धर्म से ही मोक्षप्राप्ति
करने की सिद्धि होती है ।

अन मित्र के विषय में सातो नगो को उतावले हैं

[illegible]

शुद्ध उपयोग की एकाग्रता से धर्म शुद्ध ध्यान द्वारा समकितादि (सम्यक्त्वादि) गुण को प्रकट करता हुआ मोहनाशक १२ वे गुणठाणी क्षीणमोही होकर आत्म-सिद्धि को प्राप्त करे वह सिद्ध है। इस नय ने क्षयक श्रेणि वाले को सिद्ध माना है। समभिच्छेद नय के मत में जो केवलज्ञान केवल दर्शन आदि गुणों से विभूषित है वही सिद्ध है। इस नय ने १३ वे १४ वे गुणठाणी में वर्तमान केवली भगवान् का भी सिद्ध माना है। एवंभूत नय के मत से वही सिद्ध कहा जा सकता है जो अष्ट कर्मों का क्षय कर के लोक के अयभाग में विराजमान और आठो गुणों से युक्त है।

अथ सामायिक पर सात नय उतारते हैं—

नैगम नय के मत से जब सामायिक करने का परिणाम हुआ तब ही सामायिक माना जाता है। संग्रह नय के मत में सामायिक के उपकरण लेकर विनयपूर्वक गुरु के समीप जाकर विधिपूर्वक आसन बिछाना है उस वखत सामायिक कहा जाता है। व्यवहार नय के मत से "करेमि भते" का पाठ उच्चारण कर सावध योग का त्याग पूर्वक पञ्चकखाण (प्रत्याख्यान) करे उस वखत सामायिक माना जाता

ने । मन्मथ ने देव से देव जनन और हाथों
 योग यह सब बात में प्रवेशने लगे तब ही सामाजिक
 कथा बनी । मन्मथ ने देव से जीव और अजीव
 का मन्मथ ब्रह्म जन्म का भाव-मन्मथ की भावों और
 लक्षणों में मन्मथ भाव का यह है उस ब्रह्म सामा
 जिक कथा बनी । मन्मथ ने अभिप्राय में आधिक
 मन्मथ का है । सामाजिक भाव का । मन्मथिन्
 मन्मथ का है । मन्मथ का भाव मन्मथ का है ।

पाण का तो कोई कर्मर नहीं है याण तो किसी पुरुष के हाथ से हुआ है इस वासते पाण के चलाने वाले का कर्मर है। तब व्यवहार नय वाला बोला कि भाई ! याण मारने वाले का कोई कर्मर नहीं है परन्तु तुम्हारे अशुभ गत का जार है अर्थात् अशुभ ग्रह का कर्मर है। तब कजुम्त्र नय वाला बोला कि भाई ! ग्रह का कोई कर्मर नहीं है क्योंकि ग्रह तो सब ही समानदृष्टि वाले हैं किन्ता को भी दुःख देने नहीं है परन्तु तुम्हारे कर्मों का कर्मर है। तब शब्दनय वाला बोला कि भाई ! कर्मों का कोई कर्मर नहीं है क्योंकि कर्म तो जह (अनेकन) हैं, कर्मों के करने वाले तो अपने जीव हैं, जिस परिणाम से कर्म करते हैं वैसे ही फल भोगते हैं इसलिए तुम्हारे जीव का ही कर्मर है। तब समभिरुद नय वाला बोला कि भाई ! जीव का तो कोई कर्मर नहीं है जैसा केवली भगवान् ने भाव देखा तो वैसा ही जीव का परिणाम होता है, तदनुसार कर्म करता है, आर देता ही फल भोगता है, उस को कोई टालने समय नहीं है इसलिए समभाव का अवलम्बन करना चाहिये। तब एवभूत नय वाला बोला कि ये सुन्दर दुःख जगति सब वाय व्यवहार रूप प्रवृत्ति है, कर्मों का कर्ता तथा भाक्ता कर्म ही है परन्तु

३. अवयवार्थिक, ४. सम्बन्धार्थिक, ५. सुवचनार्थिक,
६. सत्तावयवार्थिक और ७. सम्बन्धवयवार्थिक।
१. निमित्तवयवार्थिक— जो सब वस्तु को निमित्त रूप से
 स्वीकार करे २. एकवयवार्थिक— जो अस्तित्व और
 सत्ता को अद्वैत मानकर एकवयवार्थिक को ही इच्छा
 माने ३. बहुवयवार्थिक— जो शक्तिदि गुण से सब
 वस्तु समान माने सब वस्तु सम को एक ही जीव करना हुआ
 तत्त्ववयवार्थिक का अर्थ है "सर्ववस्तु जीवम्"।
४. सम्बन्धवयवार्थिक— जो सब वस्तु को अपने योग्य गुण को
 ही माने ५. सत्तावयवार्थिक— जो शक्ति को
 स्वीकारे ६. सम्बन्धवयवार्थिक— जो सब वस्तु
 को गुण और सम्बन्ध से एक माने ७. सम्बन्धवयवार्थिक—
 जो 'सब वस्तु का सब सम्बन्ध एक है' ऐसा माने।
८. सुवचनवयवार्थिक— जो प्रत्येक वस्तु के अर्थ सब
 प्रमाणों को सुवचन माने ९. सत्तावयवार्थिक— जो
 वस्तु के अस्तित्व को प्रमाण एक समान है' ऐसा माने।
१०. सम्बन्धवयवार्थिक— जो सब और वस्तु
 एक प्रमाण है, अस्तित्व सम्बन्ध है' ऐसा माने।

संज्ञावयवार्थिक सब के गुण और सत्ता से ही है

प्रकार-१. उक्त के पर्याय को मरण करने वाला, भयानक
 मित्र के योग के पर्याय ॥ २. उक्त के भयानक
 पर्याय को मानने वाला, उक्त के भयानक मानने योग्य
 भयानक पर्याय को मानने ॥ ३. मरणपर्याय को मानने
 वाला, एक गुण से मानने वाला मरणपर्याय के योग
 पर्याय उक्त के एक गुण को मानने वाला गुण से मानने
 योग्य उक्त के एक गुण को मानने वाला ॥ ४. गुण के
 भयानक पर्याय को मानने वाला, एक गुण के
 भयानक मरण को मानने वाला पर्याय करने ॥ ५. उक्त
 के भयानक मरण को मानने वाला पर्याय मरणपर्याय
 को मानने वाला मरण पर्याय ॥ ६. भयानक

४ अशुद्धअतिपर्याय-जैसे जीव-द्रव्य के जन्म और मरण । ५ उपाधिपर्याय-जैसे जीव के साथ कर्मों का सम्बन्ध । ६ शुद्धपर्याय-जैसे मूलपर्याय सब द्रव्यों का एकसमान है ।

अब दूसरी तरह से भी द्रव्याधिक के १० भेद और पर्यायार्थिक के ६ भेद कहते हैं जिस में द्रव्याधिक के १० भेद इस प्रकार-१ कर्मोपाधिनिरपेक्ष शुद्ध द्रव्याधिक-जो कर्मोपाधि स्वरूप से अलग शुद्ध स्वरूप का अनुभव करना जैसे ससारी जाव को सिद्धसमान कहना । २ उत्पादव्यप्राधान्येन सत्ताग्राहक शुद्ध द्रव्याधिक-जो उत्पादव्यप्राधान्येन सत्ता स्वरूप से वस्तु को ग्रहण करना जैसे अशुद्धनिष्पत्ति ऐसा कहना । ३ भेद कल्पनानिरपेक्ष (स्मिन्नस्वगुणपर्याय से अभिन्नशुद्ध द्रव्य का ग्राहक) शुद्ध द्रव्याधिक-जो भेद कल्पना से अभिन्न शुद्ध वस्तु कहना जैसे निजगुणपर्याय से द्रव्य अभिन्न है ऐसा कहना । ४ कर्मोपाधिमापेक्ष अशुद्ध द्रव्याधिक जो कर्मोपाधि संयुक्त वस्तु का अनुभव करना, जैसे आत्मा को कार्य माना आदि कहना । ५ उत्पादव्यप्राधान्येन सत्ताग्राहक-अशुद्ध द्रव्याधिक-

उत्पाद जगत् में संयुक्त वस्तु का अनुभव करना जैसे
 वस्तु एक समय में उत्पाद जगत् और ध्रुव में
 संयुक्त है, ऐसा कहना । भेदकल्पनामापेक्ष अशुद्ध
 तर्काधिक-जा भेदकल्पना करके संयुक्त अशुद्ध
 वस्तु का अनुभव करना, जैसे 'ज्ञान दर्शनादिक आत्मा
 का गुण है' ऐसा कहना । १ अन्वय द्व्यर्थिक-
 जा गुण वशात् स्वभाव करके वस्तु का अनुभव करना,
 जैसे गुण वर्णन स्वभावान्वयक है ऐसा कहना ।
 २ सादृश्यादिक सादृश्यादिक-जा सादृश्य का ही महत्ता
 का जैसे सादृश्यादिक-जा सादृश्य ही है ऐसा
 कहना । ३ सादृश्यादिक, तर्काधिक जा
 वस्तु व वस्तु वस्तु का महत्ता का जैसे सादृश्यादिक,
 गुण का अनुभव ही है वस्तु वस्तु है ऐसा कहना ।
 ४ सादृश्य सादृश्यादिक सादृश्यादिक, सादृश्य स्वभाव का
 सादृश्य है वस्तु वस्तु वस्तु वस्तु है ऐसा कहना ।

यद्यपि सादृश्य वस्तु वस्तु वस्तु वस्तु वस्तु वस्तु
 वस्तु वस्तु वस्तु वस्तु वस्तु वस्तु वस्तु वस्तु वस्तु
 वस्तु वस्तु वस्तु वस्तु वस्तु वस्तु वस्तु वस्तु वस्तु
 वस्तु वस्तु वस्तु वस्तु वस्तु वस्तु वस्तु वस्तु वस्तु

करके संयुक्त है परन्तु नित्य है और पर्याय पने अनुभव करना, जैसे सिद्धो का पर्याय नित्य है । ३ अनित्य-शुद्ध पर्यायाधिक- जो सत्ता को गौण करके उत्पाद व्यय स्वभाव से अनुभव करना जैसे समय समय प्रति पर्याय विनाशवान् है । ४ सत्ता सापेक्ष स्वभाव नित्याशुद्ध पर्यायाधिक- जो सत्ता स्वभाव न्युक्त नित्य अशुद्ध पर्याय पने अनुभव करना जैसे एक समय में पर्याय नानं स्वभावान्मक है । ५ कमोगाधिनिरपेक्षस्वभाव नित्यशुद्ध पर्यायाधिक- जो कर्म के उपाधि स्वभाव से भिन्न नित्य शुद्ध पर्याय पने अनुभव करना, जैसे संसारी जीव के पर्याय सिद्धपर्याय के समान शुद्ध है । ६ कमोगाधि सापेक्षस्वभाव अनित्याशुद्ध पर्यायाधिक- जो कमोगाधि स्वभाव से संयुक्त अनित्याशुद्ध पर्याय पने अनुभव करना, जैसे नसारी जीवों की उत्पत्ति और विनाश है ।

९. सप्तभङ्गीद्वार.

भङ्गी के नाम— १ स्यात् अस्ति, २ स्यात् नास्ति, ३ स्यात् अस्ति नास्ति, ४ स्यात् अवक्तव्य, ५ स्यात्

१ इत्येवमस्य विनाश उत्तममपस्योत्पत्ति उत्पत्तिर्न भवति ।

The page contains handwritten notes in Hindi script, which are mostly illegible due to extreme blurring and low contrast. The visible fragments appear to be:

प्रति...
नामि...
श्रीगणेशाय नमः
॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

करते समय परद्रव्यादि को अपेक्षा से वस्तु में विद्यमान (रहा हुआ) नास्ति धर्म नहीं घोला जाता इस लिए वह अवक्तव्य है । २ उर्भा अवक्तव्यता के साथ वस्तु में अग्निधर्म भा है इस से यह 'स्यात् अग्नि अवक्तव्य' नाम का पानवो भङ्ग होता है। ई इसी तरह नास्तिधर्म भा अवक्तव्यता के साथ वस्तु में है इस से यह 'स्यात् नास्ति अवक्तव्य' नाम का छठा भङ्ग होता है । ३ वही अग्निपन और नास्तिपन दोनों धर्म युगपत् एकसाथ वस्तु में कहा नहीं जा सकता इस लिये अवक्तव्य और कम से अग्निनास्ति है इस से यह 'स्यात् अग्नि नास्ति अवक्तव्य' नाम का सातवां भङ्ग होता है ।

नित्य चानित्य पक्ष में इस प्रकार सप्तभङ्गी होती है—१ स्यात् नित्य, २ स्यात् अनित्य, ३ स्यात् नित्यानित्य, ४ स्यात् अवक्तव्य, ५ स्यात् नित्य अवक्तव्य, ६ स्यात् अनित्य अवक्तव्य, ७ स्यात् नित्यानित्य युगपत् अवक्तव्य

अब एक अनेक गुण पर्याय पक्ष में भी सप्तभङ्गी दिखाने के १ स्यात् एक, २ स्यात् अनेक, ३ स्यात् एक-अनेक, ४ स्यात् अवक्तव्य, ५ स्यात् एक अवक्तव्य, ६ स्यात्

२. निक्षेप द्वार.

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

नमो नमो नमो नमो नमो नमो नमो नमो नमो नमो नमो ॥५॥

(11-1-11)

[illegible][illegible]

‘मम निर्देश-विमलपदो मे जो गुण मही है
 तम को, तम मम मे कवना अब नाम निर्देश है । इस
 को मम मे गुण मे मे = अक्षयधाम नाम, अक्षयधाम अक्ष-
 यम, अक्षय = अक्षयधाम नाम । अक्षयधाम नाम-गुण-
 निर्देश नाम अक्षयधाम जो नाम गुण कर के सहित तो,
 जैसे अक्षय = अक्षयधाम अक्षय का अक्षय के अंगने वाले

प्रतिमा का रूप, स० बहून में वस्त्रादिकों के टुकड़ों को माल कर बनाया हुआ रूप जैसे कञ्चुकी, अक्ख-
 १० चन्दन के पत्तों का रूप, व० कोहियों का रूप ।
 इन काष्ठकर्म आदि दशा के विषय में आवश्यक क्रिया
 युक्त साधु का एक अथवा अनेक, सद्भाव- काष्ठक-
 मर्यादिका के विषय गगन्ये आकार अथवा असद्भाव-
 चन्दन कोड़ादिका के विषय आकार रहित स्थापना
 करें वह स्थापनावश्यक है । इन नाम और स्थापना
 में उक्त विंशत्य है । इनमें नाम तो यावन्कथित
 अपने आश्रय द्रव्य की स्थितिवत्तया पर्यन्त रहने
 वाला होता है और स्थापना इन्वरा (गोड़े काल तक
 रहने वाला) और यावन्कथित (अपने आश्रय द्रव्य
 को स्तनापर्यन्त रहने वाला) दोनों तरह की होती है ।

३ द्रव्यावश्यक के दो भेद होते हैं—आगमनों
 द्रव्यावश्यक और नोआगमनों द्रव्यावश्यक । आगमनों
 द्रव्यावश्यक— उत्तरा आवात्मन ए नि पदमिच्छित
 १, दित २, जित ३, मित ४, परिजित ५, नामसम ६,
 धोतसम ७, अतास्तकखर ८, अणुचक्रवर ९, अवा-
 इतकखर १०, अकवलिअ ११, अमिलिअ १२, अवचा-
 नेलिअ १३, पटिपुण १४, पटिपुणगधोस १५, कटोद-
 विपेसुक १६, गुरुवायणोवगय १७, सेण नन्ध वायणाए

था और वह काल प्राप्त हो गया, उस के मृतक शरीर को भूमि पर अथवा स्थान पर लेटा हुआ देख कर किसी ने कहा कि यह इस शरीर द्वारा जिनोपदिष्ट भाव से आवश्यक इस सूत्र का अधिसामान्य प्रकार से प्ररूपता था, विशेष प्रकार से प्ररूपता था, समस्त प्रकार भेदाभेद द्वारा प्ररूपता था तथा क्रिया विधि द्वारा सम्यक् प्रकार दिखलाना था जैसे शब्द के घड़े को तथा घा के घड़े को देख कर कोई कहे कि यह शब्द का घड़ा तथा घा का घड़ा था ।

२ भव्यशरीर नाआगम से द्रव्यावश्यक— जैसे किसी आवक के घर पर लड़के का जन्म हुआ उस वक्त उस का देख कर कोई कहे कि इस लड़के की आत्मा इस शरीर से जिनोपदिष्ट भाव द्वारा आवश्यक इस सूत्र के अधि का जानकार भविष्यत काल में (आयदा) होगा, उसे नये घड़े का देख कर कोई कहे कि यह शब्द का घड़ा तथा घा का घड़ा होगा ।

३ जानकशरीर-भव्यशरीर-तद्व्यतिरिक्त ना आगम से द्रव्यावश्यक के नान भेद होते हैं— १ लौकिक, रेकुप्रावचनिक और ऐलोकोत्तर । लौकिक-जानक शरीर-भव्यशरीर- तद्व्यतिरिक्त- नाआगम से द्रव्यावश्यक वह हैं जो कोई राजेश्वर तलवर माड्म्विक कौटुम्बिक

भावावश्यक के दो भेद हैं - १ आगम से भावावश्यक और २ नाआगम से भावावश्यक ।

आगम से भावावश्यक - जिसने आवश्यक इस सूत्र के अर्थ का ज्ञान किया है और उपयोग कर के सहित है उस को आगम से भावावश्यक कहते हैं । नाआगम से भावावश्यक के तीन भेद होते हैं - १ लाकिक नाआगम से भावावश्यक २ कृपावचनिक नाआगम से भावावश्यक और ३ लाकात्तर नाआगम से भावावश्यक ।

लाकिक नाआगम से भावावश्यक - जो लोग पूर्वाह्न - प्रभात समय - उपयोग सहित भारत और अपराह्न दुपहर पाल उपयोग सहित रामायण को वांचे तथा श्रवण कर उसका लाकिक नाआगम से भावावश्यक कहते हैं ।

कृपावचनिक नाआगम से भावावश्यक - जो ये पूर्वोक्त चरक, चारिक, यादव पायट मार्ग में चलने वाले पथावसर " इल्लजलिहामजपान्दुस्वनमोकारमाह - आह भावावस्सयाह संति मे न कृपावयणिअ भावावस्सयं " इ० यज्ञ दिपय जलाजलि का देना अथवा संभ्याऽर्चनसमय जलाजलि का देना , अथवा देवी के सन्मुख हाथ जाड़ना , हां ० अश्विन का

आवश्यक में प्रारम्भ काल से लेकर प्रतिक्षण चढते २ प्रयत्नविशेष अध्यवसाय के रखने वाले, तदष्टो० उसी आवश्यक के अर्थ के विषे उपयोग सहित अर्थात् तावतर वैराग्य के रखने वाले, तदपि० उसी आवश्यक में सब इन्द्रिया (इन्द्रियों के व्यापार) को लगाने वाले, तन्मा० उसी आवश्यक के विषे अन्यवच्छिन्न उपयोग सहित अनुष्ठान से उत्कृष्ट भाव द्वारा परिणत होने आवश्यक के परिणाम रखने वाले, अण्णत्थ० उसी आवश्यक के सिवाय अन्यत्र किसी भी स्थान पर मन वचन आर काया के योगा का न करते हुए चित्त का एकाग्र रखने वाले, शाना वरुत्त उपयोग सहित आवश्यक से उसका लाभात्तर नाआगम से भावावश्यक कहते हैं । इति लाभात्तर नाआगम से भावावश्यक ।

अब आवश्यक के एकाधिक नाम कहते हैं—

१ आवससय २ अवससरणिज्ज ३ धुवनिग्गहो ४

विमोर्हाय ।

५ अउल्लयण त्थवग्गो, ६ नाओ ७ आराहणा ८ मग्गा ॥ १ ॥

समणंण सावण्णय, अवससकायव्वय इवइ जम्हा ।

यतो अहो निसस्सय, तम्हा आवससय नाम ॥ २ ॥

का कारण होने से उस को आराधना कहते हैं ७ ।
मन्त्रो० मोक्ष मय नगर में पहुँचाने वाला होने से उस
को मार्ग कहते हैं ८ । साधु और साध्वी धावक और
धाविकाओं से रात और दिन की संधि में यह
अवश्य किया जाता है, इसलिये इस को आवश्यक
कहते हैं ।

३ द्रव्यगुण-पर्याय-द्वार

द्रव्य— गुणपर्यायवद्द्रव्यम् इति (तन्वार्थसूत्र
४) — वचनान् जा गुणा के समूह और
पर्याय से युक्त है उसका द्रव्य कहते हैं ।

गुण— 'सहभाविना गुणा इति वचनान्, द्रव्य
के पूरे हिस्से में और उस का सब हालता में रहे
उसको गुण कहते हैं ।

पर्याय— गुणविकारा पर्याया इति वचनात्
गुणों के विकार को पर्याय कहते हैं, अथवा "कमवर्तिनः
पर्याया इति वचनान् जा कमसे बदलती रहे उस
को पर्याय कहते हैं ।

द्रव्य के दो भेद हैं— जाव द्रव्य और अजाव
द्रव्य । गुण के अनेक भेद हैं, परन्तु मुख्यतया जीव

तन्त्र , ३ सक्रियत्व और चौथा मिलन विखरन रूप परमगुण गुण है । (१) कालद्रव्य के भी चार गुण हैं
१ स्वरूपित्व , २ अनेननत्व , ३ अक्रियत्व और चौथा
नया पराना वर्तनालक्षण गुण है ।

इन में प्रत्येक का पचास चार चार होती है —
१ धर्मास्तिकाय का चार पर्याय— १ स्कन्ध, २ देश, ३ प्रदेश
और ४ स्वगण्य । २ अधर्मास्तिकाय और ३ आकाशा-
स्तिकाय का भी चार चार पर्याय होती है ।
४ जाति द्रव्य का चार पर्याय— १ अव्याघात, २ अवगाह,
३ ह्यमन चार अगुरुत्व । ५ पुद्गल द्रव्य की चार
पर्याय— १ वक्षः, २ गन्ध, ३ रस चार ४ स्पर्श अगुरुत्व
सहित । ६ काल द्रव्य का चार पर्याय— १ अतीत,
२ भूतगत, ३ भविष्यमान चार ४ अगुरुत्व ।

विरल अल्प प्रकार से द्रव्य गुण पर्याय के भेद कहते
हैं— द्रव्य गुण पचास द्वादश प्रकार का है । गुण द्वादश प्रकार
का है सामान्य और विशेष ।

अमर्त्त है, उस के भाव को अमर्त्तत्व कहते हैं ।

धर्मास्तिकायादि ब्रह्म द्रव्यों में से एक एक द्रव्य में पूर्वोक्त इन दश सामान्य गुणों में के आठ आठ गुण पाये जाते हैं, जैसे - १ जीव द्रव्य में अचेतनत्व और मर्त्तत्व ये दो गुण नहीं हैं, शेष आठ गुण (१ अग्नित्व, २ वायुत्व, ३ द्रव्यत्व, ४ प्रमेयत्व, ५ अगुरुलघु, ६ प्रदेशत्व, ७ ज्ञेयत्व, ८ अमर्त्तत्व) पाये जाते हैं । २ पुद्गल द्रव्य में ज्ञेयत्व और अमर्त्तत्व ये दो गुण नहीं हैं, शेष आठ गुण (१ अग्नित्व, २ वायुत्व, ३ द्रव्यत्व, ४ प्रमेयत्व, ५ अगुरुलघु, ६ प्रदेशत्व, ७ अज्ञेयत्व, ८ मर्त्तत्व) पाये जाते हैं । ३-४ धर्म अर्धम आकाश और काल इन चार द्रव्यों में ज्ञेयत्व और मर्त्तत्व ये दो गुण नहीं हैं, शेष आठ गुण (१ अग्नित्व, २ वायुत्व, ३ द्रव्यत्व, ४ प्रमेयत्व, ५ अगुरुलघु, ६ प्रदेशत्व, ७ अज्ञेयत्व, ८ अमर्त्तत्व) पाये जाते हैं । इस प्रकार दश गुणों में से दो दो गुण वर्ज कर शेष आठ आठ गुण प्रत्येक द्रव्य में पाये जाते हैं ।

विशेष गुण सोलह प्रकार का होता है - १ ज्ञान, २ दर्शन, ३ स्मृति, ४ वीर्य, ५ न्यश, ६ रस, ७ गन्ध, ८ वर्ण, ९ गतिहेतुत्व, १० स्थितिहेतुत्व, ११ अवगाहनहेतुत्व, १२ वर्तनाहेतुत्व, १३ ज्ञेयत्व, १४ अज्ञेयत्व, १५ सु-

पृथिवी जलोलोक, अतम प्रभा पृथिवी अधोलोक, और
 अतमरत्न प्रभा पृथिवी अधोलोक । त्रियोगलोक के जम्बू
 द्वीप और तवगस्तसुद्र में यावत् स्वयम्भूरमण द्वीप
 और स्वयम्भूरमण सुद्र तक जिनने जलस्थान द्वीप
 समुद्र हैं, उनमें ही त्रियोगलोक के भेद हैं । ऊर्ध्वलोक के
 पन्द्रह भेद -- 'सुधमे देवलोक' से लेकर यावत् १२ वां
 अस्त्युत देवलोक '३' वां नवमैवेन्द्रक, १४ वां पांच
 जलुनर विमान और '५' वां ईशानाश्रम । पृथिवी, ये
 पन्द्रह भेद हुए ।

३ =

जिस के नागकुण्डल का नमस्कार हुआ तब पर्याप्त
 उपास होता है उसी का नाम ब्रह्म है, इस के अनेक
 भेद हैं १ समय २ अवलिका, ३ उच्छ्वासनि-
 श्वास, ४ प्राण एक अमोन्नुवास ५ श्लोक (मान-
 प्राण), ६ लव (मान श्लोक) ७ सुहृत् (५५ लव,
 अथवा २३० श्लोक, अथवा ३५५३ स्वमोच्छ्वास
 अथवा १४५५५२० एक करोड़ सहस्र लाख सत्तर
 तर हजार दो सौ सोन अवलिका, अथवा दो घड़ी,
 अथवा ४८ निमिष्ट), ८ अयोगज ३१ सुहृत् अथवा
 २४ घण्टे), ९ पक्ष (पन्द्रह अयोगज, १० मास (दो

३ कारण-कार्य द्वार.

॥

जिन के द्वारा कार्य मजदूर के समे कारण करने हैं। अर्थात् कार्य के सत्य को कारण करने हैं।

॥

जो कुछ कारण प्रमाण दिया उस के समर्थ होने से वह कार्य बलवाना =

इन कारण कार्य पर दृष्टान्त करने में, जैसे किसी वस्तु को रक्ताकर और रक्ता के और रक्ता में बहुत आसानी उस को और के लिए रक्ता में बैठना वह जो कारण है और रक्ताकर और प्रवृत्ति का कार्य है।

४ निश्चय-व्यवहार द्वार.

(३३३)

वस्तु का निश्चय प्रमाण - जो चीजों के सत्य अवस्था में रहे - उस को निश्चय करने हैं।

(३३३)

वस्तु की जो सत्य प्रवृत्ति या अवस्था का बदलना

८ उपादान-निमित्त कारण द्वार.

जो पदार्थ स्वयं स्वरूप परिणामे उस को उपादान कारण कहते हैं, जैसे घट का उत्पत्ति में मिट्टी। तथा अनादि काल से नान्य में जो पर्यायों का प्रवाह चला आरता है उस में जो अनन्तर पूर्वक्षणवर्ती पर्याय है वह उपादान कारण है और अनन्तर उत्तरक्षणवर्ती जो पर्याय है वह फल है।

जो पदार्थ स्वयं स्वरूप परिणामे किन्तु कार्य को उत्पत्ति से उत्पन्न करता है उस को निमित्त कारण कहते हैं, जैसे घट का उत्पत्ति में कुम्भकार दण्ड चक्र आदि।

उपादान कारण शिष्य का और निमित्त कारण गुरु महाराज का जिसे से ज्ञान का प्राप्ति होती है। इस पर चर्चा कहते हैं -

१ निमित्त प्रधान और उपादान भा अशुद्ध - जैसे गुरु अज्ञानी और शिष्य भा अज्ञानी। २ निमित्त अशुद्ध और उपादान शुद्ध - जैसे गुरु अज्ञानी और शिष्य

2

1

2

1

2

1

2

1

2

1

2

१ प २ प ३ प ४

जिस के द्वारा पदार्थ स्पष्ट जाना जावे उस को प्रत्यक्ष कहते हैं । इस के दो भेद हैं- इन्द्रिय प्रत्यक्ष और नोइन्द्रिय प्रत्यक्ष । इन्द्रिय प्रत्यक्ष के पांच भेद हैं- १ श्रोत्रेन्द्रिय प्रत्यक्ष, २ चक्षुरिन्द्रिय प्रत्यक्ष, ३ घ्राणेन्द्रिय प्रत्यक्ष, ४ रसनेन्द्रिय प्रत्यक्ष, और ५ स्पर्शेन्द्रिय प्रत्यक्ष । नोइन्द्रिय प्रत्यक्ष के तीन भेद हैं- १ अवधिज्ञान प्रत्यक्ष, २ मनःपर्यवज्ञान प्रत्यक्ष और ३ कैवल्यज्ञान प्रत्यक्ष ।

२ अनुमान प १

साधन से साध्य के ज्ञान को अनुमान कहते हैं । इस के तीन भेद हैं- १ पूर्ववत्, २ शेषवत् और ३ दृष्ट-साध्यवत् ।

पूर्ववत् - पूर्वोपलब्ध विशिष्ट चिह्न द्वारा जो पदार्थ का ज्ञान किया जावे, उस को पूर्ववत् कहते हैं, जैसे किसी माता का पुत्र बाल्यावस्था में विदेश चला गया और वहाँ जवान होकर पीछा अपने घर आया तो उस की माता पूर्वदृष्ट क्षत व्रण लाञ्छन मस और तिल आदि चिह्नों द्वारा अपने पुत्र को पहचाने ।

पहा हुआ देख अनुमान करे कि यह सोनैया वही है जिसे मेने पहले देखा था ।

इसी विशेष दृष्ट के सन्नेप से तीन भेद कहते हैं—
अतीत काल ग्रहण, वर्तमान काल ग्रहण और
अनागत काल ग्रहण ।

अतीत काल विषय जो ग्राह्य वस्तु का परिच्छेद (ज्ञान) उसको अतीतकाल ग्रहण कहते हैं, जैसे ग्रामान्तर जाते हुए किसी पुरुष ने रामने में नृत्य सहित भूमि धान्य के बहुत समूह (डेर) निपजे हुए, कुण्ड सरोवर नदी धावही नालाब आदि भरे हुए, और बाग बगीचे हरे भरे देखकर अनुमान किया कि इस स्थान पर अतीत काल में सुवृष्टि हुई है ।

जो वर्तमानकालविषयक ग्रहण हो उसको वर्तमान काल ग्रहण कहते हैं जैसे गोचरी जाते हुए किसी हुनिराज ने अन्यन्त भाव भक्ति से प्रचुर भात पानी देने हुए बहुत दानारों को देखकर अनुमान किया कि यहा अभी वर्तमान काल में सुभिक्ष है ।

जो अनागत (भविष्यत्) काल विषयक ग्रहण हो उसको अनागत काल ग्रहण कहते हैं । जैसे आकाश का निर्मल पना, पर्वतों की श्यामता बिजली सहित

पहा हुआ देख अनुमान करें कि यह सोनैया वही है जिसे मेने पहले देखा था।

इसी विशेष दृष्ट के समुपलब्ध तीन भेद कहते हैं—
अतीत काल गहरा वर्तमान काल गहरा और
अनागत काल गहरा।

अतीत काल विषय जो गहरा वस्तु का परिच्छेद (ज्ञान) इसको अतीतकाल गहरा कहते हैं, जैसे आमाल्लर जाते हुए किसी दुग्ध ने राने में नृत्य सहित भूमि धान्य के बहुत समस्त (देर) निपजे हुए, झुण्ड सरोवर नदी बावड़ी नालाब आदि भरे हुए, और बाग घाटीचे हरे भरे देखकर अनुमान किया कि इस स्थान पर अतीत काल में सुवृष्टि हुई है।

जो वर्तमानकालविषयक ग्रहण हो इसको वर्तमान काल गहरा कहते हैं, जैसे गोवरी जाते हुए किसी हुनिराज ने अत्यन्त भाव भक्ति से प्रचुर भात पानी देते हुए बहुत दानारों को देखकर अनुमान किया कि यहा अभी वर्तमान काल में सुनिष्ठ है।

जो अनागत (भविष्यत्) काल विषयक ग्रहण हो उसको अनागत काल गहरा कहते हैं। जैसे आकाश का निर्मल पना, पर्वतों की श्यामता धिजली सहित

गणधरों के सूत्ररूप आगम तो आत्मागम हैं और अर्थरूप आगम अनन्तरागम हैं। तथा गणधरों के शिष्या के सूत्ररूप आगम अनन्तरागम हैं और अर्थरूप आगम परागम हैं। इस के बाद इन के शिष्य गणधरों के सूत्ररूप आगम और अर्थरूप आगम से दाना का परन्तरागम है किन्तु आत्मागम और अनन्तरागम नहीं हैं।

१० गुणगुणी द्वार.

ज्ञानादि का गुण रहते हैं उन ज्ञानादि गुणों को धारण करने वाले को गुणी कहते हैं।

११ सामान्य विशेष द्वार.

जो लक्षण से वस्तु का वर्णन किया जावे उस को सामान्य कहते हैं और जिस से द्वारा वस्तु का भिन्न भिन्न कर के विस्तार दिया जावे उस को विशेष कहते हैं। इस सामान्य विशेष को दृष्टान्त द्वारा स्पष्ट करते हैं, जैसे— (१) सामान्य से द्रव्य और विशेष से द्रव्य के दो भेद होते हैं— १ जीव द्रव्य और २ अजीव द्रव्य।

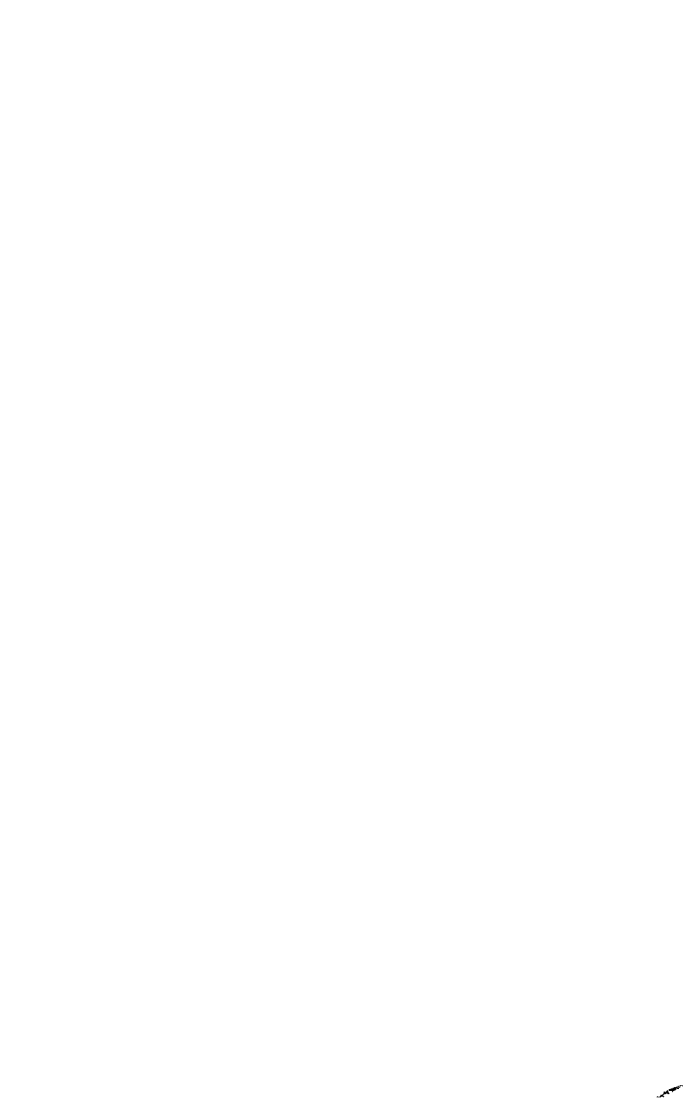


६ नमःप्रभा नारक और ७ नमस्तमाप्रभा नारक । (८) सामान्य से रत्नप्रभा नारक और विशेष से दो प्रकार- पर्याप्त नारक और अपर्याप्त नारक । इसी प्रकार पर्याप्त और अपर्याप्त इन दो वा श्रेय से दोष छहो (१४) पृथिविदा के नारक। वे भेद जान लेना चाहिये ।

(१०) सामान्य से निर्दिष्ट और विशेष से पांच प्रकार- १ पृथ्वीकाय, २ अग्निकाय, ३ जलान्द्रिय, ४ चतुरिन्द्रिय और ५ एकैन्द्रिय । १३ सामान्य से एकैन्द्रिय और विशेष से पांच प्रकार- १ पृथ्वीकाय, २ अक्ताय, ३ जलकाय, ४ वायुकाय और ५ वनस्पति काय ।

१८ सामान्य से पृथ्वीकाय और विशेष से दो प्रकार- १ नमःप्रभा और २ नमस्तमाप्रभा । १८ सामान्य से नमःप्रभा और विशेष से दो प्रकार- १ पर्याप्त नमःप्रभा और २ अपर्याप्त नमःप्रभा पृथ्वीकाय । (१९) सामान्य से चार पृथ्वीकाय और विशेष से दो प्रकार- १ पर्याप्त चार पृथ्वीकाय और २ अपर्याप्त चार पृथ्वीकाय । इसी प्रकार (२०) अक्ताय, (२१) जलकाय, (२२) वायुकाय और (२३) वनस्पति काय के भेद जान लेवे ।

२४ सामान्य से चन्द्रिय और विशेष से दो



चार भेद होने हैं— १ ज्ञानि ध्यान २ गुरु ध्यान, ३ धर्मध्यान और ४ गुरु ध्यान । इन चारों ही ध्यानों का विशेष वर्णन भगवती मन्त्र उपाधि मन्त्र आदि अनेक ग्रन्थों में जान लेना चाहिये ।

अब प्रकारान्तर से ध्यान के चार भेद कहते हैं—
१ पदम्य-ध्यान, २ पिण्डम्य-ध्यान, ३ रूपम्य-ध्यान
और ४ रूपार्तात-ध्यान ।

१ पदम्य-ध्यान— अग्निहोत्रादिरूपांच परमेष्ठियों के गुणों का स्मरण कर के चित्त में उन का ध्यान करना उस को पदम्य ध्यान कहते हैं ।

२ पिण्डम्य-ध्यान— पिण्ड ध्याने अपने शरीर में रहती हुई अपना आत्मा में अग्निहोत्र सिद्ध आचार्य उपाध्याय और साधु के गुणों का चिन्तन करना, अधवा गुणों के गुणों में उपयोग की पकता करना उस को पिण्डम्य ध्यान कहते हैं ।

३ रूपम्य-ध्यान— जो रूप में रहा हुआ भी मेरा जीव अरूपी और अनन्तगुणी है ऐसा चिन्तन करना, तथा जो वस्तु का स्वरूप अनिजयावलम्बी होने बाद आत्मा के रूप की पकता चिन्तन उस को रूपम्य ध्यान कहते हैं । इन तीनों ध्यानों का समावेश पूर्वोक्त धर्म-ध्यान में होता है ।

चाराहादि कालिक ध्रुव अर्थात् सायु मुनिगज का पंच महाव्रत आग्रह के चार व्रत, अगर धर्म और अगमार् धर्म आदि का जो वर्णन हो उस को चरण करणानुयोग कहते हैं । इस अनुयोग में नीति की प्रधानता है । इस का फल प्रमाद की निवृत्ति और अप्रमाद की प्राप्ति है ॥

२ धर्मकथा (प्रथमा) नुयोग—आख्यायिकावचन—जो कृषिभाषित जाल्—जाना धर्मकथा आदि, और अन्य—त्रिपट्टिगन्ताका पुण्य चरित्र तथा मोक्ष गामी जाँचों का भूत भविष्यत वर्तमान काल सम्बन्धी वर्णन हो उस को धर्मकथानुयोग कहते हैं । इस अनुयोग में अलङ्कार जाल् की प्रधानता है । इस का फल विषय कणाय की निवृत्ति और उपजम् वैराग्य की प्राप्ति है ॥

३ गणिता (काला) नुयोग—सन्धाशाल्वाचन—जो सूर्यप्रजसि आदि मन्त्र तथा नरक निर्यज्ञ मनुष्य और देवों के सुख दुःख अवगाहना आयुष्य आदि का वर्णन हो, अथवा द्वीप समुद्र आदि तीन लोक (स्वर्ग-मर्त्य पाताल) का वर्णन हो, अथवा गाक्षेय भङ्ग आदि भङ्ग जाल् का वर्णन हो उस को गणितानुयोग कहते हैं । इस अनुयोग में परिक्रमाष्टक (गणित शास्त्र)

की प्रधानता है। इस का फल चित्तव्यग्रता की निवृत्ति और चित्त की एकाग्रता की प्राप्ति है।

४ द्रव्यानुर्योग-दृष्टिवाद वचन- जो पद द्रव्य का विचार, सात नव, नव पदार्थ, पञ्चास्तिकाय और प्रमाण आदि निश्चय नया का अधन है उस को द्रव्यानुर्योग कहते हैं। इस में न्याय शास्त्र की प्रधानता है। इस का फल सज्जगदि दापायी निवृत्ति और सम्यक्त्व की निर्मलता की प्राप्ति है ॥

२१ जागरणा (३) द्वार

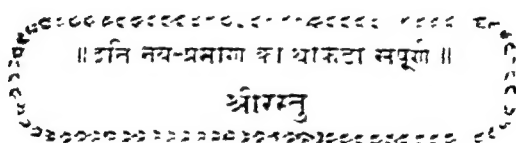
जागरणा- निद्रा के क्षय होने पर जा जागृत होना अर्थात् जागना उम का जागरणा कहते हैं। इस के तीन भेद हैं- १ धर्म जागरणा, २ अधर्म जागरणा और ३ कुटुम्ब जागरणा।

१ धर्म जागरणा- धर्म चिन्तन के लिए जागना उस को धर्म जागरणा कहते हैं। इस के तीन भेद हैं १ बुद्ध जागरणा, २ अबुद्ध जागरणा और ३ सुदक्ष जागरणा। १ बुद्ध जागरणा - जो अरिहन्त भगवान्, उत्पन्न हुआ केवलज्ञान और केवल दर्शन को धारण करने वाले घावन् सब भाव को जानने वाले तथा सब पदार्थ को देखने वाले और दूर हुई है अज्ञान रूप

पंच परमेश्वरी को नमः, गुरुं जिन आजा लाल ।
श्रीजिनधर्म प्रसाद से, वर्गे मंगल माल ॥६॥

अन्तिम मङ्गलम् -

ब्राह्मी चन्दनवालिका भगवती राजामती द्रोपदी,
कौशल्या च मृगावती चमूदमामती च मद्रा सती ।
कुन्ती शीलवती नलम्प दयिता चला प्रभाकर्यापि
पद्मावन्यापि सुन्दरी दिनमुग्धे कुर्वन्तु वो मङ्गलम् ॥



Printed at the Sethia Lion Printing Press
BIKANER 20-1-28 3000

